औरत की छवि–भाषा, संस्कृति और व्यवहार

जुही

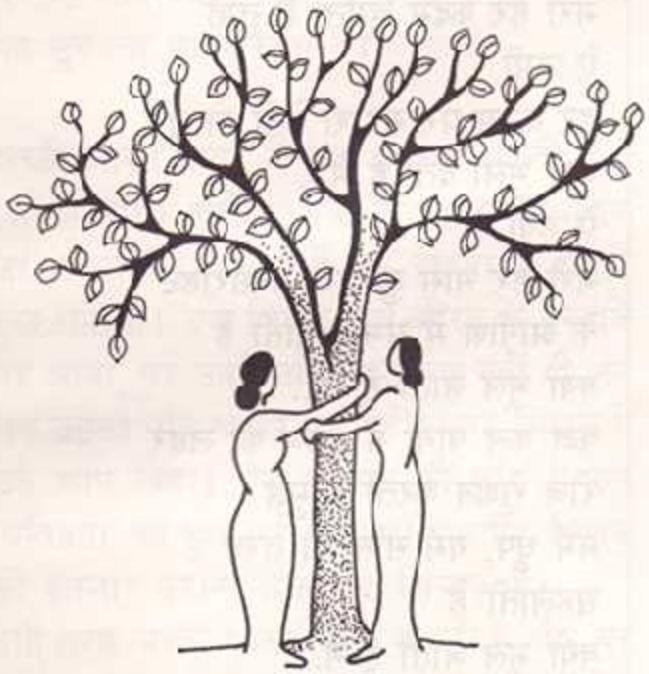

अब अच्छी औरत की परिभाषा हमें खुद गढ़नी होगी और यही सच्चाई समाज को स्वीकारनी होगी क्योंकि मूल धुरी को नकार कर विकास का दंभ नहीं भर्य जा सकता यह धुरी हम औरतें ही हैं।

चाहे हम सदियों पुरानी रामायण-महाभारत की कथाएं देखें, चाहे बीसवीं सदी की प्रचलित कहावतें। एक चीज़ दोनों समय में समान है। वह है समाज की नज़र में औरत का मान्य रूप। रामायण में औरत को झूठी, मक्कार, लालची, बिना सोचे काम करने वाली कहा गया है। महाभारत में लिखा है, "एक सौ जबानों वाला आदमी, अगर एक सौ सालों तक जीवित रहे और पूरा जीवन सिर्फ स्त्री के दोष गिनने में लगाए तो भी वह सारे दोष नहीं गिन पाएगा"।

मनुस्मृति कहती है 'अगर पति में कोई सदगुण न हो, अगर पति में हजारों अवगुण हों तो भी स्त्री को चाहिए कि वह इसे नज़रअंदाज करे। अपने पति की भगवान समझकर पूजा करे। तभी उसे स्वर्ग नसीब होगा।

भाषा, कहावतों, बोलचाल तक...

जगह-जगह प्रचलित कहावतों और भाषा को अगर ध्यान से सुनें तो उनमें भी कुछ ऐसी ही छवि उभरती है।

'पांच बेटियां हों तो राजा भी रंक हो जायेगा'।

'बेटे को भरपेट खा लेने दो, उसकी पत्नी उसकी बची झूठन से पेट भर लेगी'।

'ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब तारण के अधिकारी'

'औरत के चार लाख अवगुण होते हैं, सदगुण

केवल तीन होते हैं।'

'पति का मान होना ही चाहिए, चाहे वह पत्थर या तिनके समान ही क्यों न हो।'

बंगाल, गुजरात, कश्मीर से कन्याकुमारी तक सब जगह यही चलन है। यानि औरत वही है—बोझ, झूठी, चालाक, बद्दिमाग और न जाने क्या क्या। लोक गीतों और लोककथाओं का हाल भी कुछ ऐसा ही है। उनकी भाषा हमारे रोजमर्रा के जीवन में उतर जाती है और अपनी पकड़ मजबूत बनाती है।

संस्कृति और रिवाज़ों से

रीति रिवाज़ और संस्कृति को ही देखें तो एक 'अच्छी औरत' की सधी हुई छवि सामने आती है। यह छवि हर समाज, भाषा, धर्म के बंधन चीरती हुई होती है, हर जगह मान्य। अच्छी औरत वही है जो खुद को ढंककर रखे, हाथ, पैर, कमर, सिर पर कपड़ा रखे, बड़ों का आदर करे। ख़ासकर मर्दों का, देश के कुछ भागों में ससुर-जेठ के सामने जाने पर सिर पर पल्ला या घूंघट ओढ़ने का चलन है। जो औरत इसे नहीं मानती वह बेहया कहलाती है। जबकि मर्दों के लिए पहनावे में कोई ठोस नियम कायदे नहीं हैं। इस तरह अगर लड़की पैंट या बिना बाजू का ब्लाउज पहनती है तो कहा जाता है वह पश्चिम की नकल कर रही है। हां मर्द चुस्त जींस, निकर पहन सकता है।

पहनावे, बोलचाल, व्यवहार में

पहनावे में ही नहीं बैठने, चलने, बोलने के ढंग भी मर्द और औरत के लिए अलग-अलग हैं। औरत को 'धीरे बोलना चाहिए' 'कम बोलना चाहिए'। वह लड़की जो पेड़ पर चढ़े, साइकिल चलाए, दबंग हो उसे 'मर्दाना' करार दिया जाता है। उसे 'हंटर वाली', मर्द सिंह कहा जाता है।

हां, अगर छप्पर पाटने को और अगर सीढ़ी पर चढ़कर पति का सहयोग करे तो यह उसका धर्म है। पति के दोस्तों से हंस-बोल ले तो बदचलन, आवारा हो और पति की मौज़ूदगी-ग़ैर मौज़ूदगी में उन्हें खाना-चाय पिला दे, आव-भगत करे तो यह सुघड़ता का परिचय है।

अच्छी औरत दायरे में कुछ भी कर सकती है

'अच्छी औरत' चाहे तो प्रचलित कायदे के ख़िलाफ़ जा सकती है। शास्त्रों में एक किस्सा है जिसमें कुछ ऐसा है। एक भिक्षुक एक औरत के दरवाजे पर आया, पर उसने उसे भिक्षा तक नहीं दी जब तक उसका पति खाकर उठ नहीं गया। भिक्षुक ने उसे श्राप दिया। पर भगवान की कृपा से उस 'पतिव्रता' का कुछ नहीं बिगड़ा। हालांकि भिक्षुक को इंतजार कराना शास्त्रों के ख़िलाफ़ है।
इसी तरह अच्छी औरत खाना बनाती है और घर के सब लोगों को खिलाकर बचा-खुचा खाती है। न बचे तो भूखी सो जाती है। नौकरी पेशा औरतें नौकरी तो कर सकती हैं, पर मर्द साथियों के साथ रात को बाहर नहीं जातीं। अगर वह जाती हैं तो ज़रूर उनके चरित्र में कोई लांछन लगाया जाता है।

दो छोर-दो जवाब

इतना सब जानने-समझने-सुनने के बाद, सवाल उठता है—इन सभी पहचानों, सामाजिक-सांस्कृतिक पहचानों के जवाब में क्या हुआ है। क्या-क्या कदम उठाए गए हैं और आगे क्या करना है। जवाब है— दो मुख्य परस्पर विरोधी धारणाएं नज़र आती हैं। एक हाथ पर है विरोध, नारी आंदोलन, नारीवाद का। इन रिवाजों, भाषाओं के खिलाफ़ आवाज़ उठाने का। चेतना का, उठकर मुकाबला करने का। बंधन तोड़ने का। दूसरी ओर है—मौज़ूदा छवि को बरकरार रखने का। उससे फ़ायदा उठाने का। तभी तो राजनीति में नेता औरतें सिर ढककर, साड़ी पहन, अच्छी औरत की छवि को प्रोत्साहित करती हैं। साथियों को 'भाई साहब' बनाती हैं, दोस्त नहीं। सौंदर्य प्रतियोगिता में जिस्म दिखाती सुन्दरियां, निश्चित जवाब देती हैं। जैसे सुष्मिता सेन कहती है औरत वही है जो मर्द को सिखाए, देखभाल करना, बांटना और प्यार करना। औरत का मूल स्वरूप यही है और इस जवाब के बदले उसे विश्व सुंदरी का खिताब मिलता है। जिस्म की प्रदर्शनी पर वाह-वाह और दौलत मिलती है। सुर्खियों में नाम आता है, और राष्ट्रपति की बग्गी में सवारी नसीब होती है।

जरूरी क्या है

ऐसे माहौल में ज़रूरी है— अपनी कोशिशें ज़ारी रखना। सभाओं, मीटिंगों में एक दूसरे से अपने विचार बांटना। अपने घरों से शुरु करके, बाहर तक स्त्री-पुरुष के बीच फ़र्क की खाईयों को पाटने का प्रयास करना। अपनी कहना, दूसरों की सुनना। (पितृसत्तात्मक समाज ने अपने राज को कायम रखने के लिए ही भाषा, संस्कृति, रिवाज़ों के दायरे में 'अच्छी औरत' की छवि गढ़ दी। उसकी नाक में नकेल डाल दी। बस उनका मकसद निकल गया। हम फंस गए।) पर सोचना यह है कि हमारी पहचान क्या हो, हमारी छवि क्या हो, यह कोई और क्यों तय करे, हम क्यों नहीं? □